Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 12, Issue No. 2, January-2017, ISSN 2230-7540

अद्वैतवेदान्त के अनुसार जगत् का उपादान

Dimple Rani[1]* Dr. Nidhi Rastogi[2]

[1] Research Scholar of OPJS University, Churu, Rajasthan

[2] Associate Professor, OPJS University, Churu, Rajasthan

सार – अद्वैतवेदान्त में दो ही कारण हैं- उपादान और मिमित्त। ब्रह्म ही जगत् का उपादान कारण है और ब्रह्म ही उसका निमित्तकारण भी। वैतन्य पपक्ष की दृष्टि से वह निमित्त कारण है और माया की दृष्टि से ब्रह्म ही जगत् का उपादान कारण है। अर्थात् जब ब्रह्म जगत् रचना के लिये स्वभाव करता है, जब वह चाहता है कि जगत् का बनाऊँ तो वह जगत् का निमित्त कारण कहलाता है और जब वह अपनी उपाधि माया को प्रधान बनाता है तब वह उसका उपादान कारण कहलाता है।

----------X----------

ईश्वर मायोपाधिक ब्रह्म है। माया का वह अधिपति है। माया के वश में नहीं है। माया उसके वश में रहती है। परमार्थ रूप में ब्रह्म उपाधिरहित है। जगत् के जन्म स्थिति और प्रलय का कारण होने से वह ईश्वर कहलाता है। विशुद्ध रूप में वह परब्रह्म है जो निर्गुण और निर्विशेष है। उसमें किसी प्रकार का गुण और वैशिष्ट्य नहीं है।

कारण और कार्य में अभेद हुआ करता है। क्या कभी घट मिट्टी से पृथक् रह सकता है, या कुण्डल सुवर्ण से विभिन्न रह सकता है। घटका नाम और रूप तो हमारे द्वारा कल्पित कर लिये गये हैं। वस्तुतः तो मिट्टी ही सत्य है। घट का अधिष्ठान मिट्टी है। इसी प्रकार जगत् का अधिष्ठान ब्रह्म है। ब्रह्म ही इसका उपादान है। यह जगत् ब्रह्म का ही रूप है। इसका नाम और रूप आरोपित है। वास्तव में जगत् नहीं है। यह ब्रह्म ही है। हमने इसे जगत् समझ लिया है।

प्रश्न हो सकता है कि एक ही ब्रह्म दोनों कारण कैसे हो सकता है? इसके उत्तर में उपनिषद् कहती है कि मकड़ी अपने जाल के प्रति उपादान कारण भी है और निमित्त कारण भी। मकड़ी ही बनाने वाली है और वह निज शरीर से जाल को बनाती है। पृथ्वी भी वनस्पतियों के प्रति उभयकारण है। नख और केश के प्रति शरीर भी अभयकारण है। यदि ब्रह्म भी जगत् के प्रति उभयकारण है तो इसमें आश्चर्य क्या है?1 बादरायण ने जगत् का जन्म स्थिति और प्रलय ब्रह्म से ही स्वीकार किया है।2

यदि कहो कि जगत् तो वेतन है नहीं। ब्रह्म चेतन है। चेतन ब्रह्म अचेतन जगत् का उपादान कैसे हो सकता है? चेतन से उत्पन्न पदार्थ वेतन ही होना चाहिये? इसलिए सुख दुःख मय अचेतन जगत् ब्रह्म से विभिन्न ही मानना उचित है।

इसका उत्तर यह है कि चेतन से अचेतन की ओर अचेतन से चेतन की उत्पत्ति लोक में देखी जाती है। दही और गोबर दोनों जड़ पदार्थ हैं किन्तु उनके मिश्रण से बिच्छुओं की उत्पत्ति देखी गयी है। शरीर चेतन है किन्तु नप केध रोम दि अवचेतन पदार्थ उससे उत्पन्न होते हैं।

शंका हो सकती है कि यदि जगत् और ब्रह्म में अभेद है तो भोक्ता और भोग्य का विभाग कैसे उत्पन्न होगा? यह शंका ठीक नहीं। समुद्र और तरंगों में अभेद होने पर भी व्यावहारिक भेद जैसे स्वीकार किया जाता है, वैसे ही जगत् और ब्रह्म में व्यवहारिक भेद हैं।

1. जगत् और उसकी परमार्थतः सत्यता

जगत् व्यवहार में सत्य है किन्तु परमार्थ में मिथ्या है। यह संसार ज्ञानियों के लिए ही मिथ्या है। अज्ञानियों के लिए यथार्थ है। ईश्वर एक मायावी है। उससे अपनी माया से इस जगत् को बनाया है। जिस प्रकार एक जादूगर अपने जादू के बल से विचित्र पदार्थों की रचना करता है। वैसे ही ईश्वर (ब्रह्म) ने माया से जगत् कीरचना की है। जादूगर उन्हीं लोगों को भ्रम में डाल सकता है, जो उसके जादू को नहीं जानते जो उसके रहस्य को जानते हैं उन्हें उसका जादू प्रभावित नहीं करता, यही स्थिति ब्रह्म की है। ब्रह्म की माया अज्ञानियों के लिए ही है। ज्ञान वालों के लिए जगत् मिथ्या है।3

www.ignited.in

जगत् को मिथ्या कहने का अर्थ यह नहीं है कि उसका नितान्त अभाव है। मिथ्या का अर्थ है सत् और असत् से विलक्षण होना।4 जगत् को सत् नहीं कह सकते। क्योंकि शंकराचार्य के अनुसार सत् उसे कहते हैं कि जो वस्तु जिस रूप से निश्चित हो यदि वह रूप निरन्तर उसी भाव से स्थित रहे तो वह वस्तु सत्य कहलाती है। इस परिभाषा के आधार पर जगत् को सत् नहीं कहा जा सकता। संसार प्रतिक्षण परिणामी है- चंचल है और परिवर्तनशील है। ऐसी स्थिति में जगत् को सत्य कैसे कहा जा सकता है। संसार असत् भी नहीं है। क्योंकि उसका भान होता है। असत्य वस्तु का कभी भान नहीं होता। आकाश-कुसुम और शशशृंग का भान किसी को नहीं होता। ऐसे सत् और असत् से विलक्षण जगत् को अद्वैत वेदान्त में मिथ्या कहा जाता है।

अद्वैत वेदान्त के अनुसार जगत् के स्वरूप को ठीक-ठीक पहचानने में विद्वान पुरुषों में भी त्रुटि पायी जाती है। प्रायः लोक कहते हैं कि संसार स्वप्न के समान नितान्त असत्य है। किन्तु ऐसा नहीं है। संसार स्वप्न तुल्य नहीं है। व्यवहार में वह ब्रह्म के समान ही सत्य है। स्वप्न के पदार्थ भले ही असत् हों किन्तु जाग्रतकाल के पदार्थों का अनुभव प्रत्यक्ष रूप से होता है।

विज्ञानवादी बौद्धों का कथन है कि बाह्य पदार्थ केवल विज्ञानरूप हैं। स्वप्न के पदार्थों और जाग्रदवस्था के पदार्थों में कोई अन्तर नहीं होता। स्वाप्निक पदार्थ बाह्य पदार्थ के बिना ही आकारवान होते हैं, वैसे ही जागृति दशा में भी घटादि कोई बाह्य पदार्थ नहीं है। वह केवल विज्ञान रूप है।

बाह्यो न विद्यते ह्यर्थो यथा वालैर्विकल्प्यते।

वासना लुण्ठित चित्तमर्था भासे प्रवर्तते।।

-स्यादवाद, पृ. 159

उपर्युक्त मत का निराकरण करते हुए आचार्य शंकर कहते हैं कि संसार को स्वप्नवत् नहीं कहा जा सकता, क्योंकि संसार के बाह्य पदार्थों का अनुभव प्रत्येक क्षण हो रहा है। वस्तु और वस्तु ज्ञान को एक कैसे माना जा सकता है। भोजन के बिना तृप्ति कहीं नहीं देखी गयी।

स्वप्न और जागरित दशा में महान् वैधम्र्य होता है।

स्वप्नदशा का बाध जागने पर हो जाता है। जागरित दशा का बाध संसार काल में कभी नहीं होता। तत्त्व ज्ञान होने पर ही संसार का बाध हो सकता है। ब्रह्मज्ञानी के लिये ही संसार बाधित रहता है। व्यवहार काल में उसकी एक ठोस सत्ता है। अतः संसार व्यावहारिक सत्य है। हाँ ''परमार्थदशा में तत्वज्ञानी को संसार बाधित होने से असत्य अवश्य माना गया है।

2. जगत् ब्रह्म का विवर्त है, परिणाम नहीं

यहाँ पर अद्वैत वेदान्त का यह सिद्धान्त विशेषण ध्यातव्य है कि ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति होने पर भी जगत् ब्रह्म का परिणाम नहीं है अपितु ब्रह्म का विवर्त है। विवर्त का अर्थ है- अतात्विक परिवर्तन। वस्तु ज्यो की त्यों रहे, आप भ्रान्ति वश उसे अन्यथा समझ लें। यह अन्यथा भाव ही विवर्त है।5 जैसे- रज्जु में सर्प की प्रतीति विवर्त है। रज्जु पहले भी रज्जु थी, रज्जुज्ञान के बाद भी रज्जु ही रहेगी। बस हुआ इतना है कि आपने इन्द्रिय दोष के कारण अथवा विषय दोष के कारण कुछ समय के लिये उसे सर्प समझ लिया। ऐसे ही ब्रह्म को जगत् समझ लिया गया है। वस्तुतः जगत् नहीं है ब्रह्म ही है। अध्यास वश ब्रह्म को जगत् समझ लेना ही विवर्त है।

3. विवर्त का कारण अध्यास

जिज्ञासा होती है कि ब्रह्म को जगत् कैसे समझ लिया गया है? इसका उत्तर यह है कि इसका कारण अध्यास है। अतत् में तत् का ज्ञान, जो वस्तु जैसी नहीं है उसे वैसा समझ लेना ही अध्यास है। मिथ्या ज्ञान उसका स्वरूप है। यह अध्यास अनादि है अनन्त है, स्वाभाविक है। कत्र्तृत्व और भोक्तृत्व का प्रवर्तक है।6

4. जगत् के पाँच धर्म

जगत् में पाँच धर्मों की उपलब्धि प्रत्येक को होती है। ये पाँच धर्म है-सत्ता, ज्ञान, प्रियत्व नाम और रूप। उदाहरण के लिये घट को ही लीजिये। हम कहते हैं-घटोऽस्ति। इससे घट की सत्ता ज्ञात होती है। 'घटो भाति' यह अनुभव भी प्रत्येक को होता है। घट प्रकाशित होता है, इससे घट का ज्ञान या प्रकाश ज्ञात हो रहा है। 'घटो में प्रियः'- यह घट मुझं प्रिय है, यह भी सब अनुभव करते हैं। घट का एक नाम है और घट का कुछ रूप है।

अब विचारणीय यह है कि क्या ये पाँचों धर्म घट के ही हैं या इनमें कुछ धर्म बाहर से आये हैं जो इस समय घट के माने जा रहे हैं?

इसके उत्तर में अद्वैत वेदान्त का मत है कि इनमें से जगत् के अपने केवल दो ही धर्म हैं- नाम तथा रूप। शेष तीन धर्म अर्थात् अस्ति भाति तथा प्रियत्व ब्रह्म से अनुवर्तमान हैं। ब्रह्म के इन धर्मों का घट में आरोप हो रहा है। वैसे ब्रह्म

www.ignited.in

निर्धर्मक है किन्तु उपचारवश अस्ति भाति और प्रिय को ब्रह्म का धर्म कहा जाता है। धर्म के स्थान पर इन्हें अंश कहना अधिक उपयुक्त है। क्योंकि वस्तुतः ब्रह्म की ही सत्ता है, ब्रह्म का ही ज्ञान होता है और ब्रह्म ही प्रिय है। यही बात याज्ञवल्क्य नै मैत्रेयी से कहीं थी कि आत्मा के लिये ही सब प्रिय होता है।7

छान्दोग्य में स्पष्ट कहा गया है कि एक ब्रह्म ही सत् था उसने ईक्षण किया कि मैं बहुत हो जाऊँ। उसने फिर तेज जल और अन्न इन देवताओं को उत्पन्न किया। इन तीन देवताओं में जीवात्म रूप से प्रवेश करके उसने नाम और रूप की व्याख्या की।8 इससे सिद्ध होता है कि वस्तुतः नाम और रूप का ही ऊपर पर्याय जगत् है।

5. माया की मान्यता से द्वैतापत्ति नहीं

शंका हो सकती है कि अद्वैत वेदान्त में अज्ञानोपहित शक्ति से जगत् की सृष्टि मानी गयी है। माया या अज्ञान ब्रह्म की बीज शक्ति है।9 ऐसी के कारण ब्रह्म जगत् की रचना करता है। जब अज्ञान को एक शक्ति मान लिया गया तब अद्वैत की क्षति क्यों नहीं होती। इससे तो ब्रह्म और माया इन दो तत्त्वों की सिद्धि होती है।

इसके उत्तर में अद्वैतवादियों का यह कथन है कि द्वैतापत्ति तब हो सकती थी जब हम माया को सद्रूप मानते। माया तो सत् असत् से विलक्षण है। वह एक अनिर्वचनीय तत्त्व है। उसका निर्वचन सत् कहकर नहीं हो सकता। अविद्या सत् होगी तो उसकी निवृत्ति नहीं हो सकती। क्योंकि सत् का लक्षण ही है कि वह कभी बाधि नहीं होता।10 किन्तु अविद्या का वाद्य ज्ञान से हो जाता है। विचार के आगे अविद्या ठहर नहीं सकती। अविद्या का अविद्यात्व यही तो है कि वह प्रमाण को सहन नहीं करती।11 असत् कहकर भी माया का निर्वचन नहीं किया जा सकता। असत् वस्तु का भान नहीं होता। अविद्या यदि असत् हो तो उसकी प्रतीक्षित नहीं होगी। किन्तु अविद्या की प्रतीति तो आबालगोपाल सभी को होती है। इस प्रकार एक अनिर्वचनीय तत्त्व12 को मानकर द्वैतापत्ति नहीं हो सकती।

6. ब्रह्मकारपवाद की समीक्षा:

एकत्व से द्वैत का होना असंभव: अद्वैत वेदान्त में एक ही ब्रह्म से नानात्मक जगत् की उत्पत्ति बतायी गयी है। किन्तु यह प्रश्न अनुत्वरित रह जाता है कि अकेला ब्रह्म नाना कैसे हो गया? ब्रह्म को पहले एक से दो होना चाहिये। दो से तीन तो हो सकते हैं किन्तु एक से दो नहीं हो सकते। एक से दो तभी हो सकती है जबकि एक में दूसरा पहले से अव्यक्तावस्था में विद्यमान हो। अद्वैत वेदान्ती ब्रह्म को निर्गुण और निर्विशेष मानते हैं। अतः एक ब्रह्म से नानात्मक जगत् क्थमपि उत्पन्न नहीं हो सकता।

इसके समाधान के लिये अद्वैत वेदान्ती कहते हैं कि वस्तुतः ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति हम कहाँ मानते हैं? हम तो जगत् को ब्रह्म का विवर्त मानते हैं। यह उत्तर भी विशेष उपकारक नहीं है। जगत् को ब्रह्म का विवर्त मानने वाला तो इन दोनों से पृथक् कोई होना चाहिये। इससे तो त्रैतवाद ही सिद्ध होता है।

रज्जु में सर्प का और शुक्ति में रजत का दृष्टान्त भी त्रित्ववाद को सिद्ध करता है। भ्रांति में तीन तत्त्वों का होना अनिवार्य है- भ्रान्त होने वाला व्यक्ति, भ्रान्ति का विषय रज्जु आदि तथा जिसकी भ्रान्ति हो वह सर्पादि। रज्जु और सर्प दोनों कहीं न कहीं सत्य हैं। भ्रमित होने वाला पुरुष तो प्रत्यक्ष ही है। इसी प्रकार प्रत्येक दृष्टान्त त्रैतवाद का प्रतिपादक है।

जीव और परब्रह्म तथा इन दोनों के मिथ्या भेद का कारण माया, ये तीन तत्त्व व्यवहार जगत् में तो शांकरमतानुयायी भी स्वीकार करते ही हैं। परमार्थ में भी इनको सत् मानने में कोई विरोध नहीं आता। त्रिविध ब्रह्म को तो श्रुति भी स्वीकार करती ही है।

माया अनिर्वचनीय नहीं: आचार्य शंकर मायोपहित ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति मानते हैं और माया को अनिर्वचनीय कहते हैं। यह सिद्धान्त ठीक नहीं। माया का निवर्चन सम्भव है। मायासत् असत्, से विलक्षण है यही उसका निर्वचन है। फिर अनिर्वचनीयता कहाँ रही।

दूसरी बात यह है कि वस्तु या तो सत् ही होती है या असत्। ऐसी कोई वस्तु नहीं होती जो न सत् हो और न असत् हो। सत् असत् ये विलक्षण कहना केवल वाग्जाल है। फिर दूसरी बात यह है कि माया तो सत् ही है। माया प्रकृति की स्थानापन्न है। यह प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। यह प्रत्यक्ष देखने में आता है। यह कहना कि विचार को माया सहन नहीं करती, अतः असत् है, ठीक नहीं है। विचार के द्वारा यह तो सम्भव है कि वह जिस रूप में वस्तु को हम पहले समझ रहे थे वह रूप अब नहीं रहता। वस्तु नये रूप में दिखायी देने लगती है। किन्तु यह कभी नहीं होता कि वस्तु का कोई भी अस्तित्व न रहे।

जगत् ब्रह्म की लीला नहीं: अद्वैतवेदान्त का मत है कि जगत् ब्रह्म की लीला है। यह मत भी संगत नहीं प्रतीत होता। ब्रह्म को बैठे बिठाए यह क्या लीला सूझी कि स्वयं भी जगत के जन्मादि का भार अपने सिर पर ले बैठा और किसी को मौज

मस्ती मनाने के लिये स्वतन्त्र छोड़ दिया तथा दूसरे को दाने-दाने के लिये तरसा दिया। यदि कहें कि यह सुख दुःख तो तीव के अपेन कर्मों का फल है तो हम कहते हैं कि फिर तो ईश्वर कर्माधीन हो गया वह फल देने में स्वतंत्र न रहा। कर्म ही सर्वोपरि हो गये। कर्म की सत्ता यथार्थ हो गयी। इस प्रकार तो पुनः द्वैत गले में आ पड़ा। शायद इसीलिये भर्तृहरि ने देव, विधाता तथा फलभोग की उपेक्षा करके कर्म की ही उपासना की है।13 इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि वस्तुतः उपनिषदों का सार त्रैतवाद में ही है।

7. स्वामी दयानन्द और वेदान्त सूत्रों में जगत् के कारण की यथार्थता:

हमने शोध प्रबन्ध के उस भाग में जहाँ वेदान्त दर्शन में जगत् का कारण दर्शाया है वह श्री शंकराचार्य के मत से है। क्योंकि आधुनिक वैदिक दार्शनिकों में विशेषतया यही धारणा पाई जाती है कि वेदान्त शास्त्र में श्री शंकराचार्य के अद्वैतवाद का ही प्रतिपाद्य विषय है। प्रकृति की सत्ता को ब्रह्म से पृथक् नहीं माना गया है। इससे इसमें विद्वान शंकर के मायावाद का ही दर्शन करते ही शंकराचार्य जी के मतानुसार ब्रह्म सूत्र प्रकृति को ब्रह्म की माया रूपी शक्ति मानते हैं, अतः अद्वैत वाद, ब्रह्म सूत्रों में, जगत् के मिथ्यात्व का प्रतिपादन करता है। दूसरी ओर रामानुजाचार्य जी इसी दर्शन मूं विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादन करते हैं। रामानुज संसार की यथार्थता को स्वीकार करते हैं, परन्तु प्रकृति को ब्रह्म का ही भाग मानते हैं। रामानुज ब्रह्म में प्रकृति को स्वगत भेद के अनुसार मानते हैं, अर्थात् उनके मत में, वास्तव में, प्रकृति ब्रह्म का ही अंश है।

वेदान्त में प्रकृति की विद्यमानता पर स्वामी दयानन्द के विवार उपर्युक्त दोनों विद्वानों से भिन्न हैं। वे ब्रह्म सूत्रों में प्रकृति को ब्रह्म से पृथक् अनादि तत्त्व के रूप में स्वीकार करते हैं।14 स्वामी दयानन्द से पहले भी ब्रह्म सूत्र को यथार्थवादी मानने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। ब्रह्म सूत्र के प्रतिष्ठित भाष्यकारों में महर्षि बोधयन का यथार्थवादी भाष्य था। स्वामी दयानन्द ने बोधायन मुनि द्वारा रचित वेदान्त भाष्य को प्रामाणिक माना है। अतः वह भाष्य निश्चय पूर्वक ब्रह्म का यथार्थवादी भाष्य रहा होगा।

ऋषि दयानन्द ने ब्रह्म सूत्रों पर विधिवत् भाष्य नहीं लिखा है। परन्तु उनका यह मत उनके द्वारा स्थल-स्थल पर ब्रह्मसूत्रों के प्रमाण देने से प्राप्त होता है। इसलिये दयानन्द की पुष्टि के लिये हम सीधे ब्रह्म सूत्रों पर ही विचार करते हैं।

वेदान्त दर्शन (ब्रह्मसूत्र) को मूल रूप में देखने पर पता चलता है कि यह शास्त्र संसार को माया रूप नहीं मानता। वरन् इसमें तो संसार को स्वप्नवत् मानने वालों के मत का खण्डन किया गया है। महर्षि पादरायण एक स्थल पर जाग्रत के पदार्थों की स्वप्न के पदार्थों से तुलना करते हुए कहते हैं कि जाग्रत स्वप्न के समान मिथ्या नहीं हो सकता क्योंकि स्वप्न के पदार्थों में और जाग्रत के पदार्थों में वैधम्र्यता है। अर्थात् स्वप्न के पदार्थों का जागरण काल में अभाव पाया जाता है, परन्तु जाग्रत की उपलब्धि नष्ट नहीं होती। वह अवस्था-अन्तर कालान्तर में बनी ही रहती है। अतः जागरण के पदार्थों का स्वप्न से द्रष्टान्त देना सर्वथा असंगत है। एक अन्य सूत्र में सूत्रकार, स्वप्नावस्था में पदार्थ का स्वरूप स्पष्ट न होने के कारण, इसे माया मात्र मानता है15 उपरोक्त दो प्रसंगों से स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्म सूत्र के रवयिता जाग्रत के संसार को न तो स्वप्न के समान मानते हैं और न माया मात्र। ब्रह्म सूत्र में प्रकृति को जगत् का उपादान कारण कहा गया है। शास्त्रकार संसार को बनाने से पहले अपने कारणरूप प्रकृति में वर्तमान मानता है "जिस प्रकार कपड़ा लिपटा हुआ हो तथा खोलने पर फैल जाता है16 उसी प्रकार उत्पत्ति से पूर्व संसार अपने मूल कारण प्रकृति में लीन रहता है, उत्पत्ति अवस्था में व्यक्त हो जाता है। यहाँ वेदान्त दर्शन सांख्यों के सत्कार्यवाद के अनुसार ही परिणामवाद का प्रतिपादन कर रहा है। इसके अतिरिक्त वेदान्त ब्रह्म को जगत् का निमित्तकारण मानता है। शास्त्र कहता है कि (प्रकृति) परमात्मा के अधीन होने से ही सार्थक है, अर्थात् प्रकृति अव्यक्तावस्था में परमेश्वर के अधीन रहती है तथा व्यवतावस्था में भी उसके निर्देशन में कार्य करती है, तभी प्रकृति की सार्थकता है, अन्यथा नहीं। इससे प्रतीत होता है कि शास्त्रकार प्रागवस्था में भी प्रकृति की सत्ता को मानता है, सर्वथा अभाव नहीं। शंकराचार्य जी ने भी इस सूत्र के भाष्य में प्रागवस्था में प्रकृति की विद्यमानता को स्वीकार किया है तथा कहा है कि प्रागवस्था में प्रकृति को न मानने का परमात्मा का जगत्कत्र्ता होना असिद्ध हो जायेगा, अतः प्रागवस्था मे प्रकृति परमेश्वर के अधीन थी। परन्तु शंकराचार्य जी यहाँ पर सत्ता भेद का प्रसंग उपस्थित कर देते हैं कि इन सूत्रों में व्यावहारिक सत्ता का वर्णन है। व्यावहारिक दृष्टि से ईश्वर में कर्तृत्व आदि होते हैं, अतः सूत्रों में जहाँ-जहाँ सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन है वह सब व्यावहारिक स्तर का बोध कराने वाले सूत्र हैं। लेकिन इस पर हम पूछ सकते हैं कि सूत्रों में कहाँ स्तर भेद की बात कही गई है। वास्तविकता यह है कि वेदान्त दर्शन में जगत् की वास्तविकता का वर्णन इतने अधिक व स्पष्ट रूप से किया गया है कि शंकराचार्य जी को अद्वैतवाद

की सिद्धि के लिये लाचार होकर स्तर-भेद की कल्पना का शास्त्रों पर आरोप करना ही पड़ता है।

वास्तव में वेदान्त सूत्र न तो शंकराचार्य जी के मायावाद को मानना है और न स्तर भेद को वरन् वादरायण स्पष्ट कह रहे हैं कि ''प्रतिज्ञा व दृष्टान्त के बाधक न होने से प्रकृति है।17 वेदान्त दर्शन मायावादी नहीं है यह स्वामी दयानन्द के अतिरिक्त अन्य विद्वान भी अब स्वीकार करने लगे हैं। स्वामी ओमानन्द तीर्थ अपनी पुस्तक ''पातंजल योग प्रदीप'' में कहते हैं कि ब्रह्म सूत्र परिणामवादी है, अर्थात् कार्यकारण के सम्बन्ध में सूत्रकार परिणामवादी है, विवर्तवाद नहीं।18 आपके अनुसार सूत्रकार स्पष्ट ही परिणामवाद की ओर निर्देश कर रहा है। वास्तव में ब्रह्म सूत्रों में मायावाद का आरोप नवीन वेदान्तियों का है। आप का कहना है- ''कि बादरायण के मूल सूत्रों पर साम्प्रदायिक पक्षपात से रहित होकर स्वतन्त्र विचार से दृष्टि डालने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अन्य सब दर्शनकारों (न्यायवैशेषिक, सांख्य व योग) के सदृश उन में भी सांख्य और योग के द्वैत सिद्धान्त का ही प्रतिपादन किया है।19

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदान्त प्रकृति तत्त्व का प्रतिपादन करता है और मायावाद की झलक इस शास्त्र में नहीं है। स्वामी दयानन्द का विचार कि वेदान्त दर्शन में सृष्टि का निमित्त कारण ईश्वर और उपादान कारण अनादि प्रकृति है तर्कपूर्ण है व सूत्रों के वास्तविक तात्पर्य के साथ पूर्ण रूप से मेल खाता है।

इसी प्रकार से नवीन वेदान्ती जगत् का उपादान कारण ईश्वर को मानते हैं और निमित्त कारण भी। अर्थात् अभिन्न निमित्तोपादान कारण ब्रह्म ही है। अर्थात् ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या 'जीवो ब्रह्म वे नापरः।' नवीन वेदान्तियों के इस वचन को उद्धृत करते हुए दयानन्द कहते हैं ''नवीन वेदान्ती लोग पांचवें नास्तिक की कोटी में हैं, क्योंकि के ऐसा कहते हैं ''कि करोड़ों ग्रन्थों का यह सिद्धान्त है, ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं।''20

इस मत का निराकरण करते हुए उन्होंने निम्नलिखित युक्तियाँ दी हैं- (1) ''जो वेदान्ती लोग ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति मानते हैं तो ब्रह्म के सत्य होने से उसका कार्य कभी नहीं हो सकता।'' (2) ''जो स्वप्न रज्जु सर्वादिवत कल्पित कहें तो भी नहीं बन सकता, क्योंकि कल्पना गुण है, गुण से द्रव्य नहीं (उत्पन्न होता)।'' (3) ''स्वप्न भी यथार्थ वस्तु पर आश्रित होते हैं अतः स्वप्न के दृष्टान्त से जगत् को मिथ्या नहीं दिखलाया जा सकता- ''स्वप्न बिना देखे सुने कभी नहीं आता, जो जागृत अर्थात् वर्तमान समय में सत्य पदार्थ हैं उनके साक्षात् सम्बन्ध से प्रत्यक्षादि ज्ञान होने पर संस्कार अर्थात् उनका वासनारूप ज्ञान आत्मा में स्थिर होता है, स्वप्न में उन्हीं को प्रत्यक्ष देखता है।'' (4) ''स्वप्न और सषप्ति में बाह्य पदार्थों का अज्ञान मात्र होता है, अभाव नहीं। जिसे किसी के पीछे की ओर बहुत से पदार्थ अदृष्ट रहते हैं। उनका अभाव नहीं होता, वैसे ही स्वप्न और सुषुप्ति की बात है।''21

इस प्रकार स्वामी दयानन्द की दृष्टि में यह समस्त जगत् यथार्थ है, मिथ्या नहीं। हाँ, उनके दर्शन में यथार्थवाद और आदर्शवाद का समन्वय है। उसमें लोकाभ्युदय और निःश्रेयस दोनों को समुचित स्थान दिया गया है, इस प्रकार से अद्वैतवाद वेदान्त का यह कहना असत्य सिद्ध होता है कि जगत् का उपादान कारण ब्रह्म है और यह भी भ्रम मात्र है। इस प्रकार स्वामी दयानन्द जी का कथन कि यह जगत् अनादि प्रकृति से उत्पन्न हुआ है। सत्य परीक्षा पर खरा उतरता है।

संदर्भ सूची:

1. यथोर्णनाभिः सृजते गृह्यते च, यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।

   यथा सतः पुरुघात् केषलोमानि, तथाऽक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्।।

   -मु. उ. 1, 1, 7

2. जन्माद्यस्य यतः, व्र. सू. 1, 1, 2

3. मायावीर्वावजृम्भयत्यपि महायोगविस्वेच्छया- दक्षिणामूर्तिस्तोत्र-2

4. वही

5. सतत्वतोऽन्यथा प्रथा विकार इत्युदीरितः।

   अतत्वतोऽन्यथा प्रथा विवर्त इत्युदीरितः।। - वेदान्तसार

6. एवगषमनादिरनन्ते, नैसर्गिवोच्ध्यासः मिथ्या प्रत्यय, रूपः कत्र्तृव्य

   भोक्तृत्य प्रवर्तकःसर्व लोक प्रत्यक्षः ब्रा. सू. आंक्रभाष्य 1, 1, 1

7. आत्मनस्तु वै कामाय सर्व प्रियं भवति-छोन्दोग्य

www.ignited.in

8. सदैव सौम्येदगग्र आसीत् तदेक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति। तत्तेजोऽ सृजत.... इमास्तिस्रो देवता जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्यावकरणवाणि-छा.

9. अव्यक्तनाम्नी परमेक्ष अक्तिरनाचविद्या त्रिगुणात्मिका या।

कार्यानुमेथा सधिधैव माया यथा जगत् सर्वमिदं प्रसूयते।

-विवेक चूड़ामणि, श्लोक 110

10. यद् रूपेण यन्निश्चितं तद् रूपं न व्यभिचरति पत् सत्यम्-शां. भा. 2, 2

11. अविद्याया अविद्या त्वमिदमेय तु लक्षणम्।

यत् प्रमाणा सहिष्णुत्वमन्यथा वस्तु सा भवेत्।। - बृहदारण्यक भाष्य वार्तिक-8

12. सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाऽयभिन्नाऽप्युभयात्मिका नो सा इ गाऽप्यनङ्ऽप्युभवात्मिका नो महाद्भुताऽनिर्वचनीय रूपा।।

-विवेक चूड़ामणि, श्लोक-1

13. नमस्यागो देवान्नतु हत विधेस्तेऽपि वक्षगाः, विधिर्वन्यः सोऽपि प्रति नियतक्मैक्पतदः।

14. सृष्टि का... निमित्त कारण जो परमेश्वर है। उसकी व्याख्या वेदान्त शास्त्र में है।

15. माया मात्र. तु वात्स्न्र्य नादभिव्यक्त स्वरूपत्वात्। - चे. सू. 3, 2, 3

16. घटवच्छ, वे. सू. 2, 1, 19

17. प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्, वे. सू. 1, 4, 23

18. पातंजल योग प्रदीप, पृ. 21

19. वही, पृ. 22

20. सत्यार्थ प्रकाश, स. 8, पृ. 282

21. वही, स. 8, पृ. 282- 283

Corresponding Author

Dimple Rani*

Research Scholar of OPJS University, Churu, Rajasthan